'रोटी साट्टा' का समाजशास्त्र

मारवाड़ के समाज में स्त्री-दासता का एक रूप

कैलाश रानी चौधरी

विश्व-भर के समाजों में किसी-न-किसी रूप में दासता का प्रचलन रहा है। भारतीय समाज में दासता की स्थितियों पर *मनुस्मृति* के इस कथन से कुछ अनुमान लगाया जा सकता है, 'दास सात तरीक़ों से बनाए जा सकते हैं। युद्ध के समय बंदी बना कर, भोजन के लिए दासता, दास के घर में पैदा होने पर, ख़रीद-फ़रोख़्त द्वारा, किसी के द्वारा हस्तांतरण किये जाने पर, पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त या दण्ड के रूप में दास बना कर।'[1] दुनिया भर में कृषि तथा घरेलू दासता इसके सर्वाधिक प्रचलित प्रकारों में शामिल हैं। सोलहवीं शताब्दी के अमेरिका में अफ़्रीकन

[1] देखें, वेंडी डोनिगर और ब्रायन स्मिथ (1991) : 196.

स्त्री–पुरुषों को बाग़ानों तथा घरेलू कार्यों के लिए दास बनाया गया। बीसवीं शताब्दी में गिरमिटिया/अनुबंधित श्रमिक व्यवस्था भी दासता का एक रूप रही है। प्रत्येक प्रकार की दासता के उद्‌भव के पीछे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि की भूमिका होती है। इसमें पर्यावरणीय परिस्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन आमतौर पर इतिहासकारों द्वारा दासता का यह कारण नज़रअंदाज़ किया गया है। मेरे इस शोध–पत्र में सामाजिक तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों से उपजे और राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में प्रचलित दास प्रथा के एक रूप 'रोटी साट्टा' पर चर्चा की जाएगी।

राजस्थान में इतिहास–लेखन और नारी

राजस्थान में स्त्रियों पर किये गये अध्ययनों में शशि अरोड़ा, संतोष यादव[2] वर्षा जोशी[3] और मीना गौर[4] के अनुसंधान प्रमुख हैं। इस दृष्टि से शशि अरोड़ा का शोध *राजस्थान में नारी की स्थिति : 1600 से 1800 ई.* काफ़ी अहम है।[5] इसमें अरोड़ा ने राजस्थान में महिलाओं से संबंधित जाति, समूह व समुदाय के विभिन्न रीति-रिवाजों पर रोशनी डालते हुए राजकाज से जुड़े समाज में प्रचलित जन्म, सगाई, विवाह, डोला, बहुपत्नियों, उपपत्नियों, पर्दा प्रथा, सती प्रथा के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंत:पुर से लेकर राजनीतिक क्षेत्र तक में नारी के अधिकारों, जैसे पत्नी तथा विधवा के सम्पत्ति संबंधी अधिकार, स्त्री–धन, जनानी ड्यौढ़ी, मुख्य रानी, पटरानी, संरक्षिका, राजमाता, पासवान व पड़दायत, राजघराने की स्त्रियों की सैनिक सेवाएँ आदि, विषयों पर भी अत्यंत उपयोगी प्रकाश डाला है। अरोड़ा ने मध्यकालीन राजस्थानी समाज में स्त्रियों के जीवन में शिक्षा तथा उनके सांस्कृतिक योगदान (गणगौर, रक्षाबंधन, सावित्री व्रत और रम्भा तृतीया, तीज, करवा चौथ, दीवाली, भैया दूज, और होली) के विशेष संदर्भ में भी अध्ययन किया है। लेकिन, यह सब होने के बावजूद उनके अध्ययन में निचली जाति की स्त्रियों के जीवन पर प्रकाश नहीं पड़ता। वर्षा जोशी ने राजपूतों में प्रचलित बहुविवाह तथा पर्दाप्रथा की कुरीतियों की तरफ़ हमारा ध्यान आकर्षित किया है।[6] मीना गौर ने राजपूतों में सती प्रथा और भीलों में डाकण प्रथा के प्रचलन तथा उनसे जुड़े सुधारों को अपने अध्ययन का विषय बनाया है।[7] संतोष यादव ने औपनिवेशिक काल में राजपरिवार की स्त्रियों पर अध्ययन किया है। उनका ध्यान ख़ास तौर पर कुलीन वर्ग की स्त्रियों के जीवन से जुड़ी सामाजिक कुरीतियों तथा उनसे जुड़े सामाजिक सुधारों पर केंद्रित है।[8]

इस नारी इतिहास–लेखन में ज़्यादातर अध्ययनों का केंद्र समाज के शासक वर्ग की स्त्रियाँ हैं। सम्भ्रांत स्त्रियों पर केंद्रित यह इतिहास पूरे समाज में ऐतिहासिक रूप से नारी की समग्र स्थिति को सामने लाने में नाकाम रहा है।[9] उदाहरण के लिए मध्यकालीन राजस्थान में आम तौर पर उच्च वर्गों में कन्या–वध, सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं का सामान्य प्रचलन था, वहीं विधवा पुनर्विवाह पर नियंत्रण लगाया गया था। लेकिन बहुसंख्यक कृषक, कारीगर तथा श्रमिक जातियों में आम तौर पर कन्या–वध अथवा सती प्रथा जैसी कुरीतियों का प्रचलन नहीं था। इन जातियों में विधवा पुनर्विवाह भी होता था। यही स्थिति निम्न समझी जाने वाली जातियों की भी थी। ज़ाहिर है कि समाज के इन दोनों हिस्सों के

---

[2] संतोष यादव (1987).
[3] वर्षा जोशी (1995).
[4] मीना गौर (1987).
[5] शशि अरोड़ा (1978).
[6] वर्षा जोशी (1995) : वही.
[7] मीना गौर (1987) : वही.
[8] संतोष यादव (1987) : वही.
[9] सी.एम. अग्रवाल (2007) द्वारा उद्धृत.

तौर-तरीक़ों में काफ़ी अंतर था। उच्च वर्ग में लड़की के विवाह में दहेज की परम्परा थी, जबकि निचले तबक़ों में विवाह से पूर्व सगाई के समय वर पक्ष से वधू-मूल्य लिया जाता था। उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा पर्दा किया जाता था। पर्दा किये बग़ैर वे जनानी ड्यौढ़ी की चारदीवारी से बाहर नहीं निकलती थीं। लेकिन कृषक, कारीगर तथा निम्न वर्ग की जातियों की स्त्रियों में पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं था। उन्हें घरेलू, कृषि कार्यों, पानी आदि लाने के लिए घर से निकलना ही पड़ता था। दोनों तबक़ों के रीति-रिवाजों को रहीम ने अपने दोहों में व्यक्त किया है। वे मालिन द्वारा बाज़ार में फूल बेचने का ज़िक्र करते हैं। वहीं ऊँची जातियों की स्त्रियाँ इस तरह से बाज़ार में नहीं निकल सकती थीं। नारी इतिहास-लेखन की एक समस्या नारी को एक विभेदित वर्ग के रूप में ग्रहण न करना भी रहा है। यह विभेदीकरण निम्न जाति और उच्च जाति की स्त्रियों की स्थिति में मूलभूत अंतर के कारण ज़रूरी है। नारी को एक समेकित वर्ग के रूप में देखने के कारण इतिहासकार उसके सामाजिक विभेदीकरण को या तो अनदेखा कर देते हैं या उसके ऊपर समुचित ध्यान देने से चूक जाते हैं। दरअसल, भारत में नारी-जीवन को बिना वर्गीकरण के समझा ही नहीं जा सकता। सामान्य वर्ग अथवा जनसाधारण की स्त्रियों पर शोध की ज़रूरत के संदर्भ में निम्न जातियों पर कुछ नये शोध हाल ही में हुए हैं। इनसे हमें सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई जातियों की स्त्रियों के जीवन की एक झलक मिलती है। इस सिलसिले में नंदिता प्रसाद सहाय का मध्यकालीन राजस्थान की कारीगर जातियों,[10] और जया प्रियदर्शिनी[11] द्वारा निम्न जातियों पर किये गये शोध उल्लेखनीय हैं। प्रियंका खन्ना द्वारा मारवाड़ के राजाओं द्वारा रखी जाने वाली उपस्त्रियों पर किया गया शोध भी महत्त्वपूर्ण है।

मध्यकालीन मारवाड़ समाज में प्रचलित 'रोटी साट्टा' नामक प्रथा सरसरी तौर पर देखने में हमें एक आर्थिक व्यवस्था नज़र आती है। ऐसा लगता है कि इसके तहत आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों द्वारा संसाधनों के अभाव में 'रोटी साट्टा' के माध्यम से कम उम्र की लड़कियों तथा स्त्रियों का जीवन निर्वाह हो पाता था। लेकिन, 'रोटी साट्टा' के साक्ष्यों का गहराई से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह मात्र आर्थिक परावलम्बन नहीं था। मारवाड़ के समाज में निम्न वर्ग की नारी की उपयोगिता और आवश्यकता, विशेष कर उसकी प्रजनन शक्ति तथा उसके श्रम की महत्ता, समझना ज़रूरी है। राजस्थान का समाज सामंतवादी और पितृसत्तात्मक था जिसमें नारियों की स्थिति प्राय: दयनीय ही रही है। दयनीय होने के बावजूद निम्न वर्ग की नारी अपनी प्रजनन क्षमता या श्रमिक के रूप में समाज तथा राज्य के लिए हमेशा उपयोगी रही है। उसकी यही उपयोगिता उसके शोषण का आधार भी बनी। राजस्थान एक विरल जनसंख्या वाला राज्य है, जहाँ कृषि अनिश्चित थी। दुर्भिक्ष पड़ते ही पलायन आम बात थी। ऐसे राज्य में समाज और राज्य नारी की प्रजनन शक्ति तथा श्रम पर अपना नियंत्रण खोने के लिए तैयार नहीं थे।

आम तौर पर पितृसत्तामक समाजों में स्त्री की शुद्धता उसके पारिवारिक संबंधों के दायरे में ही देखी जाती है। एक बार परिवार से बाहर किसी भी रूप में निकलने पर न केवल उसे बहिष्कृत माना जाता था, बल्कि उसे चरित्रहीन की संज्ञा भी दे दी जाती थी। ऐसी स्त्री को वापस अपने परिवार में या समाज में स्वीकार करना न केवल अशोभनीय, बल्कि कलंक का कारण भी माना जाता है। 'रोटी साट्टा' की प्रथा हमारे सामने एक भिन्न परिस्थिति पेश करती है। इसके तहत लड़कियाँ युवा होने तक किसी अन्य जाति के घर में परपुरुष के संरक्षण में रहती हैं, लेकिन विवाह लायक़ उम्र होने पर उनके परिवार द्वारा उनका विवाह करने के लिए उनकी वापसी की माँग की जाती है। ज़ाहिर है कि इस

[10] नंदिता प्रसाद सहाय (2016).
[11] जया प्रियदर्शिनी (2014).

प्रकार के साक्ष्य हमें मध्यकालीन राजस्थान के समाज में निम्न वर्ग की नारियों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को नये ढंग से समझने की तरफ़ ले जाते हैं।

अठारहवीं शताब्दी के मारवाड़ का समाज उच्च तथा निम्न वर्ग के साथ-साथ विभिन्न जातियों एवं उपजातियों में विभाजित था। जातियों के अपने अलग–अलग वैवाहिक तथा खान-पान संबंधी रीति-रिवाज थे। स्त्री से जुड़े हुए विभिन्न संबंधों को परिवार के दायरे के अंदर ही देखा जाता था। पति-पत्नी, माँग-मँगेतर, पिता-पुत्री आदि संबंध बहुत ही निजी थे। स्त्री से संबंधित विवादों को जाति तथा परिवार के अंदर ही निपटाया जाता था। इसके बावजूद कुछ ऐतिहासिक स्रोत बताते हैं कि स्त्री संबंधी कुछ विवादों को दरबार में अपील के ज़रिये भी निबटाया जाता था। यहाँ राज्य का हस्तक्षेप स्त्री–संबंधी विभिन्न मामलों में जाति व धर्म के बंधनों के बावजूद स्पष्ट नज़र आता है। इसका एक मतलब यह भी है कि राज्य स्त्री संबंधी मामलों में हस्तक्षेप बनाए रखना चाहता था, अथवा राज्य समाज में एक विशेष स्थिति को बनाए रखने के लिए ऐसा करता था। इसीलिए निम्न जाति की स्त्री के अध्ययन के लिए उसकी जाति, समाज तथा राज्य के साथ उसके संबंधों का गहराई से अध्ययन ज़रूरी है।

'रोटी साट्टा' के अध्ययन के लिए राजस्थानी स्रोतों की प्रासंगिकता

प्रस्तुत लेख के लिए राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में उपलब्ध राजस्थानी स्रोतों (सनद परवाना बहियों) को आधार बनाया गया है। इन बहियों में जनसाधारण द्वारा विभिन्न विवादों के समय राज्य से अपीलें की गयी हैं। राज्य द्वारा अपीलों की सुनवाई के समय दिये गये निर्णयों को इन बहियों में संगृहीत किया गया है। सनद परवाना बहियों से हमें समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों तथा उसमें भी विशेष तौर पर निम्न वर्ग की नारी के जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। निम्न वर्ग की स्त्रियों के लिए उनके परिवार द्वारा अथवा उनके स्वयं द्वारा राज्य को की गयी अपीलों का विवरण प्राप्त होता है। यह निम्न वर्ग की नारी के इतिहास लेखन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। अभिलेखागार में उपस्थित स्रोतों की विविधता निम्न वर्ग के पुरुष तथा स्त्री के उत्पीड़न को उसके कई आयामों में अध्ययन के लिए उपयुक्त स्थान प्रदान करती है। अगर हम 'रोटी साट्टा' के अध्ययन के लिए राजस्थानी स्रोतों पर नज़र डालें और उनमें मौजूद राजकीय हस्तक्षेप की विवेचना करें तो यह बात उभर कर सामने आती है कि 'रोटी साट्टा' की प्रथा सिर्फ़ दो परिवारों के बीच समझौता मात्र नहीं था, बल्कि यह संविदा का रूप ले चुकी थी। जिस तरह राजकीय हस्तक्षेप होता था, उससे यह स्पष्ट होता है कि यह प्रथा राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त थी।

मारवाड़ प्रदेश में ज़्यादातर निवासियों की जीविका कृषि पर निर्भर थी और कृषि बरसात पर। सही समय पर बरसात होने पर लोगों की ज़रूरत के मुताबिक़ अन्न का उत्पादन हो जाता था, परंतु मॉनसून की अनिश्चितता होने के कारण कृषि तथा अन्न के उत्पादन पर विपरीत असर पड़ता था। न केवल मारवाड़ में बल्कि पूरे राजस्थान में ही लोगों को मानसून की अनिश्चितता के कारण सूखा और उसके कारण पड़े अकाल का सामना करना पड़ता था। ऐसी स्थितियों में छोटे-बड़े कृषकों के यहाँ मज़दूरी का कार्य करने वाले कारीगर और खेतिहर जातियों के लोगों की हालत दयनीय हो जाया करती थी। ग़रीब तबक़े का एक बड़ा वर्ग रोटी की व्यवस्था करने में ही संघर्षरत रहता था। कवियों ने इस अवस्था का वर्णन अपनी लेखनी में बख़ूबी किया है,

मानव बिकै पाव अन्न साटै, दुरभख जग में ताव दियो।

अर्थात् हालत यहाँ तक पहुँच जाती है कि पाव भर अन्न के बदले मानव तक बिकने लगते हैं।[12] इसी प्रकार अकाल के समय एक आदमी ने सांगर (खेजड़े की फली) के बदले अपनी औरत बेच डाली।

---

[12] *बांकीदास ग्रंथावली* (1957) : 16.

अगले साल जब वर्षा ऋतु आयी और मेघ ने गरजना की तो उस आदमी ने अफ़सोस के साथ कहा :

आधो रहग्यो उंखली, आधो रहग्यो छाज।
सागर सांटै धण गयी, अब मदरो मदरो गाज॥[13]

इन हालत में अपने आपको जीवित रखना सबसे बड़ी चुनौती थी। निम्न वर्ग की जातियों के लिए और उसमें भी कम उम्र की लड़कियों, अकेली स्त्रियों और उनकी कम उम्र की संतानों के जीवन को बनाए रखने के लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। इन्हीं परिस्थितियों के तहत अपनी जीविका न चला पाने के कारण निचले वर्ग के लोग अपने बच्चों और स्त्रियों को कुछ वर्षों के लिए उच्च वर्ग के आर्थिक रूप से सम्पन्न राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य (महाजनों) जातियों के लोगों को भोजन के बदले सौंप दिया करती थी। ऐतिहासिक स्रोतों के मुताबिक़ परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा अपनी कम उम्र की लड़कियों को तथा पुरुष सदस्यों की अनुपस्थिति में स्त्रियों द्वारा स्वयं को अथवा अपनी संतति सहित किसी अन्य जाति के पुरुषों को भोजन के बदले अनिश्चित काल के लिए सौंप देने की प्रथा थी। मारवाड़ के समाज में मनुष्यों द्वारा स्वयं को भोजन के बदले गिरवीं रखने की इस प्रथा को राजस्थानी दस्तावेज़ों में 'रोटी साट्टा' के नाम से परिभाषित किया गया है। सीताराम लालस ने अपने राजस्थानी हिंदी शब्दकोश में साट्टा शब्द का अर्थ एक वस्तु ले कर बदले में दूसरी वस्तु दिया जाना अथवा दो वस्तुओं की आपस में अदला-बदली किया जाना दिया है।[14] रोटी का तात्पर्य यहाँ भोजन से है और साट्टा का मतलब बदले से है, अर्थात् लड़की/स्त्री विशेष को रोटी के बदले अन्य व्यक्ति को सौंपना। उस व्यक्ति द्वारा लड़की अथवा स्त्री की तीन प्राथमिक आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा और मकान) की ज़रूरतें पूरी की जाएँगी, और बदले में उस स्त्री पर तथा उसके श्रम पर उस व्यक्ति का अधिकार होगा। 'रोटी साट्टा' में आयी हुई लड़की, स्त्री तथा उसके परिवार को अपने मालिक के लिए शारीरिक श्रम करना पड़ता था जिसके लिए अलग से उन्हें किसी प्रकार का नग़द धन अथवा वस्तु के रूप में कोई भुगतान नहीं किया जाता था। 'रोटी साट्टा' में इस प्रकार सौपे जाने वाली लड़कियों और स्त्रियों को भोजन के बदले में किसी भी प्रकार का कार्य करवाया जा सकता था। आम तौर पर 'रोटी साट्टा' पाँच-सात वर्षों के अस्थायी अनुबंध के तौर पर होता था।

पश्चिमी राजस्थान में पर्यावरणीय परिस्थितियों की प्रतिकूलता तथा आर्थिक संसाधनों की कमी के चलते निम्न वर्ग के लोगों का जीवन-निर्वाह अत्यधिक कठिन था। जब माता-पिता या संरक्षक को बच्चों के जीवन या मृत्यु में से किसी एक का चुनाव करना होता था, तो वे स्वयं तो मेहनत-मजदूरी की तलाश में गाँव छोड़ कर निकल जाते थे और अपने बच्चों को आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति के पास सौंप जाते थे ताकि कम से कम उसके भूख से मरने का बचाव तो हो जाए।[15] आम तौर पर काम की तलाश पलायन मालवा[16] और गुजरात[17] की तरफ़ होता था। ऐसे में यातायात के साधनों के अभाव

---

[13] गोविंद अग्रवाल (1974) : 13; न केवल मारवाड़ में बल्कि राजस्थान के चुरू जैसे दूसरे ज़िलों में भी अकाल के ज़माने में जनता को बहुत कष्ट उठाने पड़ते थे. लोग ख़ुद को और अपने बच्चों को कौड़ियों के दाम बेच देते थे. लगातार पड़ने वाले अकाल कई तरह की बीमारियाँ भी साथ लाते थे. इलाज की सुविधाएँ नहीं थीं. लोग पानी तक के लिए तरसते थे, और भूख और प्यास से बहुतों की जान चली जाती थी.

[14] सीताराम लालस (2006) : 162.

[15] परगना मेड़ता के गाँव मानसर में माली जाति के व्यक्ति सुधर द्वारा अपनी भतीजी को पण्डित राजाराम के साथ 'रोटी साट्टा' के तहत रखा गया. सनद परवाना बही नं. 5, वि.सं. 1823/1766. गाँव गोहरे के जाट राजे द्वारा अपनी बेटी को राजपूत माकणोत लोधसिंघ के साथ 'रोटी साट्टा' में रखा गया, सनद परवाना बही नं. 7, वि.सं. 1824/1767. इसी प्रकार गाँव गठिया के राजपूत हीदु के साथ मेवाड़ की एक स्त्री रोटी तथा कपड़े साट्टा के तहत रहने लगी, सनद परवाना बही नं. 13, वि.सं. 1830/1773. परगना मेड़ता के गाँव उचाहड़ा के जाट जाति की स्त्री अपने दो पुत्रों के साथ परगना नागौर के गाँव पावा के जागीरदार राजपूत सरूपसिंघ के साथ 'रोटी साट्टा' में रही. सनद परवाना बही नं. 20, वि.सं. 1835/1778.

[16] अंन बिना लोक चहु चक औड़े, गया मालवे छोड़े गेह. अर्थात् जनता को अंत में विवश हो अपना देश छोड़ कर मालवे के लिए प्रस्थान करना पड़ता था, *बाँकीदास ग्रंथावली* (1957), वही : 16.

[17] सनद परवाना बही नं. 8, वि.सं. 1825/1768.
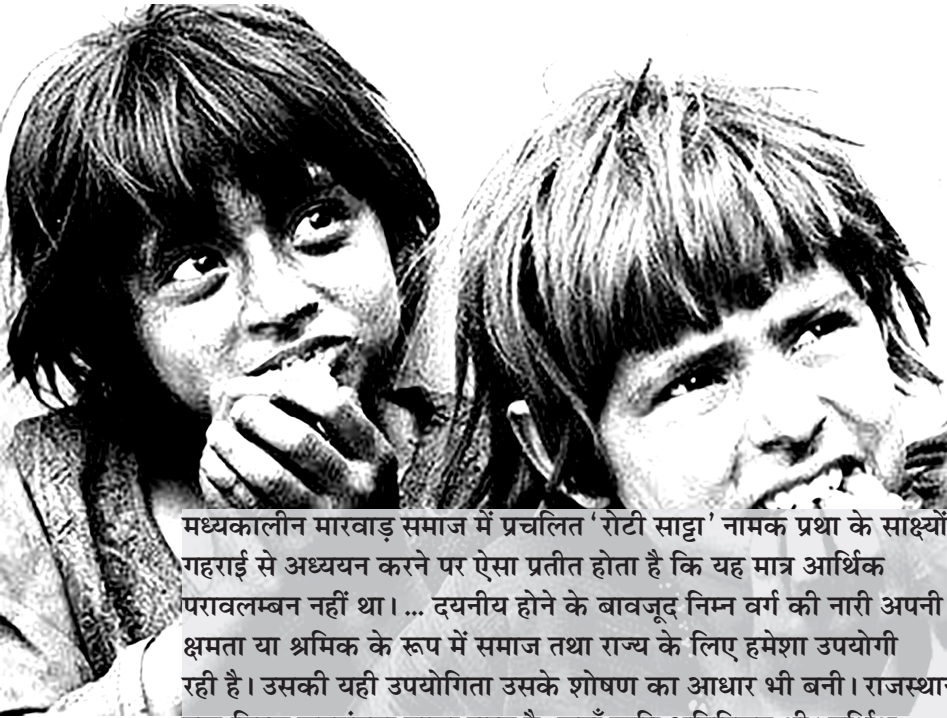
मध्यकालीन मारवाड़ समाज में प्रचलित 'रोटी साट्टा' नामक प्रथा के साक्ष्यों का गहराई से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह मात्र आर्थिक परावलम्बन नहीं था। ... दयनीय होने के बावजूद निम्न वर्ग की नारी अपनी प्रजनन क्षमता या श्रमिक के रूप में समाज तथा राज्य के लिए हमेशा उपयोगी रही है। उसकी यही उपयोगिता उसके शोषण का आधार भी बनी। राजस्थान एक विरल जनसंख्या वाला राज्य है, जहाँ कृषि अनिश्चित थी। दुर्भिक्ष पड़ते ही पलायन आम बात थी। ऐसे राज्य में समाज और राज्य नारी की प्रजनन शक्ति तथा श्रम पर अपना नियंत्रण खोने के लिए तैयार नहीं थे।

में लम्बे दुर्गम रास्तों पर अल्प आयु की संतान/स्त्रियाँ उन लोगों के लिए भार समान हो जाती थीं। पिता अथवा रिश्तेदारों द्वारा ऐसी अवस्था में 'रोटी साट्टा' कम समय के लिए जीवन बनाए रखने के लिए एक रास्ता निकाला गया। इसी प्रकार मिलती-जुलती एक अवस्था का विवरण हमें सत्रहवीं शताब्दी में जयचंद द्वारा लिखित एक स्रोत सायकी से प्राप्त होता है। इसमें मनुष्य को अकाल के समय अन्न के बदले में बेचा जा रहा है, और एक छोटे बालक को एक वक़्त के सूखे भोजन के बदले में बेच दिया गया है।[18] ऐतिहासिक स्रोतों से मिलने वाले उदाहरणों में आम तौर पर निम्न वर्ग की कृषक/कारीगर जातियों की स्त्रियों/लड़कियों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से समर्थ जातियों के पुरुषों के पास, जो मुख्य रूप से ब्राह्मण, चारण तथा राजपूत जाति के थे, के पास 'रोटी साट्टा' के तहत रखा गया दिखाया जाता है।

ऐतिहासिक स्रोतों में लड़कियों या स्त्रियों की तुलना में लड़कों या पुरुषों के 'रोटी साट्टा' के तहत गिरवीं रखने के संदर्भ नाममात्र के ही मिलते हैं। अगर मिलते ही हैं तो वे 'रोटी साट्टा' के तहत माँ के साथ आये उसके अल्पायु बेटे ही होते हैं। दूसरी तरफ़ अकेली लड़कियों को 'रोटी साट्टा' में सौंपे जाने के संदर्भ प्रचुर हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लड़कियों/स्त्रियों के 'रोटी साट्टा' में सौंपने का प्रचलन सामान्य था, जबकि लड़कों का नहीं। लगता है कि मारवाड़ के समाज में निम्न वर्ग और उच्च वर्ग की जातियों को निम्न वर्ग की नारी के श्रम, पुनरुत्पादन क्षमता की महत्ता तथा आवश्यकता

---

[18] जयचंद (1963) : 47.

की ज़रूरत और समझ थी। निम्न वर्ग का पुरुष 'रोटी साट्टा' के ज़रिये अपने परिवार स्त्री की सुरक्षा गारंटी करता नज़र आता है। चाहे वह अल्पायु यानी पाँच-सात वर्ष की लड़की हो या फिर 20-25 वर्ष की संतान सहित स्त्री, दोनों के जीवन-निर्वाह को ध्यान में रख कर यह पक्का किया गया कि निम्न वर्ग की स्त्री का अस्तित्व बने रहना समग्र समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है। इतना ज़ोर लड़के के जीवन को बनाए रखने पर नहीं दिया गया। दूसरी तरफ़ लड़के की तुलना में लड़की को 'रोटी साट्टा' के तहत रखने वाले व्यक्ति के लिए व्यावहारिक दृष्टि से भी आसान और उपयोगी था। जब किसी परिवार द्वारा अपनी लड़की को 'रोटी साट्टा' में रखा जाता था तो उसे रखने के लिए मालिक आसानी से तैयार हो जाते थे। सम्भवत: इसके पीछे कई कारण थे। जैसे, लड़के की तुलना में लड़की घरेलू कार्य करने में अधिक सक्षम होती थी। उससे बच्चों की देखरेख करवाई जा सकती थी। दूसरे युवा होने पर लड़कियों के साथ यौन-संबध स्थापित करने की आकांक्षा भी थी। पुरुषों अथवा लड़कों की तुलना में लड़की/स्त्री को 'रोटी साट्टा' में आने के बाद एक जगह पर बंधक बना कर रखना भी आसान था। सनद परवाना बहियों में हमें ऐसे साक्ष्य भी मिलते हैं जिसमें लड़के युवा होते ही 'रोटी साट्टा' की प्रथा से स्वयं को बाहर निकालने के लिए गाँव छोड़ कर भाग जाया करते थे, जबकि लड़कियों या स्त्रियों के साथ ऐसा नहीं था। इसीलिए उन्हें रखना लड़कों की तुलना में आसान था।

'रोटी साट्टा' के विभिन्न रूप और उन्हें परिभाषित करने की समस्याएँ

'रोटी साट्टा' के विविध आयामी स्वरूप का परिचय हमें सनद परवाना बहियों के विभिन्न उदाहरणों से मिलता है। इनसे स्पष्ट है कि 'रोटी साट्टा' को हम किसी एक निश्चित ढाँचे में नहीं रख सकते। यह प्रथा एक तरल स्वरूप धारण किये हुए थी। सम्भवत: समाज में इस प्रथा की आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप का निर्धारण होता गया, 'रोटी साट्टा' के नियम, क़ायदे-क़ानून समय के साथ लोगों की ज़रूरतों एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलते गये। प्रत्येक 'रोटी साट्टा' में एक समान नियमों का पालन होता नहीं दिखाई देता। यह प्रथा मुख्यत: दो भागों में विभाजित थी— अविवाहित लड़कियों तथा विवाहित स्त्रियों का 'रोटी साट्टा'। इस प्रथा को समझने के लिए दो उदाहरणों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

अविवाहित लड़की का रोटी साट्टा

तथा मानासर रो माली सुधर कहे छै म्हारी भतीजी नु सं 1812 में पं. राजाराम रोटिया साट्टे भेली राखी थी सु डावड़ी कुंवारी छै सु पाछी दिरावो तो न्यात में परणाय देउ। आ हक़ीक़त श्री हजुर मालुम हुई सु हुक्म हुवो है राजाराम नु उ वाजबी खाद्य खुराक दिराय ने डावड़ी ईण रे हवाले कराय देजो।

(गाँव मानसर के माली जाति के व्यक्ति सुधर द्वारा राज्य की कचहरी में अपील की गयी जिसके अनुसार वि.सं. 1812 में उसने अपनी भतीजी को पण्डित जाति के व्यक्ति राजाराम के पास 'रोटी साट्टा' में सौंप दिया था। चूँकि लड़की कुँवारी है अगर वापिस दिलवा दी जाए तो माली जाति में ही किसी के साथ लड़की का विवाह करवा दिया जाए, यह हक़ीक़त श्री हजुर को मालूम हुई। श्री हजुर द्वारा आदेश दिया गया कि राजाराम को जैसा उचित हो वैसे भोजन का मूल्य दिलवा कर के लड़की को सुधर के हवाले करवा दिया जाए।)

विवाहित स्त्री का रोटी साट्टा

तथा मेड़ता रे गाँव उचाहड़ा रै जाट रतनीये अठै आयनै कयो सा. 1812 में नागौर रा गाँव पावा रे जागीरदार रा। सरूपसिंघ सिभू सिंघोत म्हा दोनु भायां ने मां नु रोटीया साट्टे राखीया था नै बसीपणा रो तथा मोल लीया रो कागद कोई लिख दीनो नहीं पछै सा. 1828 रे बरस हूं तो पावा सू उचाहड़े उरो आयो ने एक भाई ने मां उठे रया सू हमार मेड़ता री कचेड़ी में पचीस रूपीया तो म्हारै माथै

सूकराणां रा श्री दरबार में भरावणा ठहेरया ने साठ रूपीया जागीरदार नु दिरावणा ठहेराया ने म्हारै छुटकारो राजीया रो कागद लिख देणो ठहेरायो सु श्री दरबार में तो पचीस ही रूपीया भर दीया ने दस रूपीया जागीरदार नु दिवा ने हमें जागीरदार ना नुकर हुय गयो है सु ओ जाब इण तरै ठहेराय ने पचीस रूपीया थे भराया हुवे ने साठ रूपीया जागीरदार नु दीरावणा ठहेराय हुवै न पछै ना नुकर हुय गयो हुवै तो आगे ठहेरायो हुवै जीण माफक जागीरदार नु दीराय ने राजीया रो कागद लिखाय देजो ने और तरे हकीकत हुवे जीण माफक जागीरदार नु दिराय ने राजीया रो कागद लिखाय देजो ने और तरे हकीकत हुवे तो आगे लिखजो।

(परगना मेड़ता के गाँव उचाहड़ा के जाट रतनीये द्वारा कचहरी में अपील की गयी जिसके अनुसार वि.सं. 1812 में नागौर के गाँव पावा के जागीरदार राजपूत सरूपसिंघ सिभू सिघोत के साथ उसकी माँ, तथा उसके भाई सहित 'रोटी साट्टा' रहे थे। रतनीये के अनुसार वे लोग 'रोटी साट्टा' में ही रहे थे तथा बसीपणा (साथ बसने) अथवा मोल (ख़रीद) लेने के तो लिखत के कागद करवाए नहीं गये थे। वि.सं. 1828 में रतनीये गाँव पावा छोड़कर गाँव उचाहड़े जाकर रहने लगा जबकि उसकी माँ तथा उसका भाई गाँव पावा में जागीरदार सरूपसिंघ के साथ ही थे। रतनीये के अनुसार कुछ समय पूर्व ही परगना मेड़ता की कचहरी में 'रोटी साट्टा' से छोड़ने के राज़ीनामा के लिखत के कागद लिखवाने की एवज में रतनीये से पच्चीस रुपये तो श्री दरबार में और साठ रुपये सरूपसिंघ को देने निश्चित किये गये जिसके बदले में सरूपसिंघ तथा राज्य द्वारा रतनीये को 'रोटी साट्टा' से मुक्त कर दिया जाएगा और रतनीये ने इस फ़ैसले के अनुसार पच्चीस रुपये दरबार में तथा दस रुपये सरूपसिंघ को चुका भी दिये लेकिन इसके बावजूद सरूपसिंघ रतनीये को 'रोटी साट्टा' से मुक्त करने के लिए ना नुकुर कर रहा था। इस अपील की सुनवाई पर राज्य द्वारा आदेश दिया गया कि अगर राज्य द्वारा पच्चीस रुपये रतनीये से 'रोटी साट्टा' से छुटकारा करवाने के बदले में भरवा लिए गये हैं। तथा इस केस के लिए जैसा कि रतनीये द्वारा बताया गया है वैसा तय किया गया है तो सरूपसिंघ को शेष रुपये दिलवाकर रतनीये को छुटकारा के राज़ीनामा के कागद दिलवा दिये जाए।)

अविवाहित लड़कियों[19] तथा विवाहित स्त्रियों के 'रोटी साट्टा' में बुनियादी अंतर था जैसा कि ऊपर दिये गये संदर्भों से स्पष्ट होता है। लड़कियों तथा स्त्रियों के 'रोटी साट्टा' में आने से पूर्व यह अंतर उसी के चलते आया और बाद में भी बना रहा। लड़कियों के परिवार के सदस्यों द्वारा उनके जीवन-निर्वाह और सुरक्षा के मद्देनज़र कुछ सीमित काल के लिए उन्हें 'रोटी साट्टा' में रखा गया। वहाँ उनका जीवन-निर्वाह हुआ और वे सुरक्षित रहीं। इस सीमित काल के गुज़रने के बाद लड़कियों के परिवार में सदस्यों द्वारा उन्हें 'रोटी साट्टा' से मुक्त करवा कर उनका विवाह करवा दिया जाता था। लेकिन, स्त्रियों/संतान सहित स्त्रियों के 'रोटी साट्टा' में आने के बाद उन्हें मुक्त करवाने के लिए प्रयत्न करने वाला उनके परिवार का कोई पुरुष सदस्य ही नहीं था। ऐसे में उनको 'रोटी साट्टा' से निकालने के लिए किसी प्रकार की कोई कार्रवाई होने की सम्भावना नहीं होती थी। उन्हें कोई आर्थिक मदद भी नहीं मिल पाती थी। विवाहित स्त्रियों तथा अविवाहित लड़कियों के 'रोटी साट्टा' में एक बुनियादी अंतर और था। अविवाहित लड़कियों के परिवार में किसी न किसी सदस्य द्वारा उनको रोटी साट्टा में सौंपा जाता था, जबकि स्त्रियों द्वारा 'रोटी साट्टा' में आने का निर्णय स्वयं द्वारा लिया जाता था। उनके परिवार में उनके और उनकी अल्पायु संतान के अतिरिक्त कोई पुरुष सदस्य नहीं होता था। बहियों से मिलने वाले विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि 'रोटी साट्टा' में आने वाली इन लड़कियों की आयु तक़रीबन चार से सात वर्ष के बीच रही होगी, वही आम तौर पर स्त्रियों की आयु बीस से ऊपर की प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि ये स्त्रियाँ आमतौर पर प्रजनन की क्षमता रखती थीं।[20] बहियों से

[19] हमें राजस्थानी दस्तावेज़ों में अविवाहित लड़कियों को भी दो प्रकार से 'रोटी साट्टा' के तहत सौंपने के उदाहरण मिलते हैं. पहला, ऐसी लड़कियाँ जिनके परिवार द्वारा उनकी 'रोटी साट्टा' में सौंपने से पहले सगाई कर दी गयी; दूसरा, जिनमें लड़कियों की सगाई तक नहीं की गयी.

[20] सनद परवाना बहियों में मिलने वाले 'रोटी साट्टा' के अधिकतर उदाहरणों के विवरणों के आधार पर लड़कियों/विवाहित स्त्रियों की आयु का अनुमान लगाया गया है. अविवाहित लड़कियों की आयु चार से सात वर्ष की प्रतीत होती है. विवाहित स्त्रियों के बारे में जो विवरण

मिलने वाले स्त्रियों के संदर्भों में इनके विधवा या सधवा होने, इनके परिवार के पुरुष सदस्यों के बारे में विशेष तौर से पति के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। सम्भवत: इन स्त्रियों के परिवार के सदस्य या तो जीवित नहीं थे, या फिर जीवित थे तो मजदूरी या काम की तलाश में दूर-दराज निकल गये थे। इन स्त्रियों को निकट भविष्य में उनके लौटने की उम्मीद नहीं थी। ऐसे में उन्होंने अपने तथा अपनी अल्पायु के संतान के निर्वाह के लिए 'रोटी साट्टा' के तहत जाने का फ़ैसला किया। इस तरह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि 'रोटी साट्टा' लड़कियों के लिए एक तरह की अस्थायी प्रथा थी। लड़की पाँच-सात वर्ष के लिए या जब तक विवाह योग्य उम्र न हो जाए, तब तक 'रोटी साट्टा' में रहती थी। दूसरी तरफ़ विवाहित स्त्रियाँ, चाहे वे अकेली रोटी साट्टा में आयी हों, या फिर अपनी संतान सहित, के लिए 'रोटी साट्टा' लगभग एक स्थायी प्रथा थी जिसमें उन्हें और उनकी संतान को अनिश्चित काल तक रहना पड़ सकता था। जब भी कोई स्त्री संतान सहित 'रोटी साट्टा' की प्रथा में प्रवेश करती थी, तो प्रमाण के तौर पर, जिसमें स्त्री की जाति के पंचों की उपस्थिति में 'रोटी साट्टा' के दस्तावेज़ (कागद) बनते थे। इन कागदों को सनद परवाना बहियों में लिखत कागद के नाम से सम्बोधित किया गया है। ये लिखत कागद अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे तथा भविष्य में 'रोटी साट्टा' के दोनों पक्षों में विवाद होने की स्थिति में राज्य तथा जाति पंचायत द्वारा लिखत के कागदों को प्रामाणिक साक्ष्य के तौर पर देखा जाता था। इन लिखत के कागदों में 'रोटी साट्टा' में आने वाली स्त्री तथा उसे 'रोटी साट्टा' में रखने वाले व्यक्ति की जाति, दोनों के गाँव तथा स्त्री की संतान, लड़कियों-लड़कों की संख्या आदि का पूर्ण विवरण लिखित रहता था। लड़कियों के 'रोटी साट्टा' में प्रवेश के समय लिखत के कागद करवाने के विवरण प्राप्त नहीं होते।

लड़कियों को 'रोटी साट्टा' से मुक्त करवाने के लिए उनके परिवार के सदस्यों द्वारा नक़द धन 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति को चुकाया जाता था, जिसे सनद परवाना बहियों में खाघ-खुराक के नाम से सम्बोधित किया गया है। लड़कियों के लिए ख़ुराक का मूल्य स्त्रियों तथा उसकी संतति के बदले लिए जाने वाले धन की तुलना में काफ़ी कम था। चूँकि स्त्रियों को 'रोटी साट्टा' से मुक्त करवाने तथा खाघ-खुराक चुकाने वाला नहीं होता था इसलिए स्त्रियों के 'रोटी साट्टा' में आने से पूर्व लिखत के कागद किये जाते थे। लड़कियों के संदर्भ में किसी प्रकार की लिखत-पढ़त न किये जाने के बावजूद इस बात के लिए दोनों पक्ष मनोवैज्ञानिक रूप से सहमत थे कि लड़की विशेष को एक निश्चित काल के लिए 'रोटी साट्टा' में रखा जा रहा है, तथा लड़की की आयु विवाह योग्य होने पर इसके परिवार के सदस्यों को लड़की को वापिस लौटाना होगा। सम्भवत: लड़कियों को 'रोटी साट्टा' में सौंपना एक पुरुष द्वारा अपनी बेटी/भतीजी पर अपने संरक्षण के अधिकारों को किसी दूसरे पुरुष को अस्थायी रूप से स्थानातंरण करना था, हालाँकि इस अधिकार को सौंपने के लिए किसी प्रकार की लिखत-पढ़त नहीं की जा रही थी। इसके बावजूद पड़ोसी, गाँव तथा जाति के लोगों को इस बात की जानकारी रहती थी। इससे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में लड़की के परिवार के सदस्य की स्थिति को 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति की तुलना में मजबूती मिलती नज़र आती है। सम्भवत: 'रोटी साट्टा' के प्रचलन की शुरुआत में इस प्रथा में इतनी जटिलता नहीं रही होगी, जितनी धीरे-धीरे समय के साथ आ गयी। ऐतिहासिक स्रोतों से मिले 'रोटी साट्टा' के विभिन्न उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं न कहीं दोनों पक्षों में इस बात की आपसी सहमति होती थी कि लड़की की विवाह योग्य उम्र होने पर उसके परिवार के सदस्य द्वारा उसकी वापसी की माँग की जाएगी और 'रोटी साट्टा' में रखने वाले व्यक्ति को

प्राप्त होते है उनमें स्त्रियों की प्रजनन क्षमता का परिचय मिलता है कि वे माँ बन सकती थीं. उनके बच्चों की आयु के विवरणों के अनुसार दो वर्ष से लेकर सात वर्ष की आयु तक की संतान उनके साथ 'रोटी साट्टा' में रहे थे. सनद परवाना बही नं. 2, वि.सं. 1822, सनद परवाना बही नं. 5, वि.सं. 1825, सनद परवाना बही नं. 8, वि.सं. 1828, सनद परवाना बही नं. 10, वि.सं. 1830, सनद परवाना बही नं. 18, वि.सं. 1838 आदि.

उसे लौटाना पड़ेगा। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं था कि लड़की की वापसी उसके परिवार में बहुत सरल तरीक़े से हो जाती थी। इसके लिए लड़की के परिवार को काफ़ी संघर्ष करना पड़ता था। पहले निजी तौर पर 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति से लड़की की वापसी की माँग की जाती थी। सुनवाई न होने पर परिवार के सदस्यों द्वारा दरबार में अपनी लड़की की वापसी के लिए अपील की जाती थी। सारी कारवाई होते-होते एक दो वर्ष और कभी-कभी उस से भी अधिक समय लग जाता था। चाहे इस सारी प्रकिया में लड़की के परिवार को कितना भी समय तथा संघर्ष करना पड़े, परंतु आमतौर पर लड़कियों को उनके परिवार के सदस्य को 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति को सौंपना पड़ता था। सनद परवाना बहियों से मिलने वाले लड़कियों के तमाम 'रोटी साट्टा' के मामलों में परिवार को लड़की सौंपना ही पड़ा,। राज्य द्वारा भी लड़की को परिवार को सौंपने का आदेश दिया गया। मारवाड़ का समाज विभिन्न जाति समूहों पर आधारित समाज था तथा लड़कियों को इस व्यवस्था से बाहर निकाल कर उनका अपनी ही जाति में विवाह कर दिया जाता था। यह भी एक कारण था कि स्त्रियों की तुलना में विवाह योग्य अविवाहित लड़कियों को 'रोटी साट्टा' से निकालने के लिए राज्य तथा जाति पंचायत द्वारा समर्थन दिया जाता था।

'रोटी साट्टा' में विभिन्न सामाजिक संबंध तथा रिश्ते-नाते

'रोटी साट्टा' प्रथा को मारवाड़ के लोगों ने विपरीत आर्थिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों के चलते अवश्य अपनाया होगा लेकिन इसके प्रभाव-परिणाम केवल आर्थिक नहीं थे। एक बार किसी लड़की/स्त्री के 'रोटी साट्टा' में प्रवेश करने के बाद उसके सारे सामाजिक संबंध और रिश्ते-नाते बदलते दिखाई देते हैं। 'रोटी साट्टा' में आने के साथ ही स्त्री/लड़की का वारसी (वारिस) के रूप में वैध अधिकारी लड़की के पारिवारिक सदस्यों के स्थान पर 'रोटी साट्टा' रखने वाला व्यक्ति हो जाता था— चाहे वह अविवाहित लड़की हो या विवाहित स्त्री। उसकी इच्छा के बिना वह घर-गाँव से बाहर नहीं जा सकती थी। लड़की के परिवार के सदस्य भी उस लड़की की सगाई नहीं कर सकते थे और अगर किसी लड़की की सगाई हुई हो तो उसके विवाह का निर्णय नहीं ले सकते थे जब तक कि वह लड़की आधिकारिक रूप से 'रोटी साट्टा' से मुक्त न हो जाए। 'रोटी साट्टा' की व्यवस्था में रह रही अवधि विशेष में लड़की के लिए किये जाने वाले निर्णयों पर 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति विशेष का बहुत प्रभाव पड़ता था। 'रोटी साट्टा' में आयी हुई अविवाहित लड़कियों के साथ यौन संबंध बनाए जाते थे। इन संबंधों से उत्पन्न संतति को 'रोटी साट्टा' रखने वाला व्यक्ति वैध संतान के रूप में स्वीकार करने के बजाय लड़की तथा उसकी संतान को उसी की जाति के किसी व्यक्ति के साथ 'रोटी साट्टा' में रख लेता था। उसी व्यक्ति को लड़की की संतान के पिता के रूप में समाज के सामने रखा जाता था। यही कारण था कि अविवाहित लड़कियों की विवाह लायक़ उम्र होने के साथ ही उसके

रोटी का तात्पर्य यहाँ भोजन से है और साट्टा का मतलब बदले से है, अर्थात् लड़की/स्त्री विशेष को रोटी के बदले अन्य व्यक्ति को सौंपना। उस व्यक्ति द्वारा लड़की अथवा स्त्री की तीन प्राथमिक आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा और मकान) की ज़रूरतें पूरी की जाएँगी, और बदले में उस स्त्री पर तथा उसके श्रम पर उस व्यक्ति का अधिकार होगा। 'रोटी साट्टा' में आयी हुई लड़की, स्त्री तथा उसके परिवार को अपने मालिक के लिए शारीरिक श्रम करना पड़ता था जिसके लिए अलग से उन्हें किसी प्रकार का नगद धन अथवा वस्तु के रूप में कोई भुगतान नहीं किया जाता था। 'रोटी साट्टा' में इस प्रकार सौंपे जाने वाली लड़कियों और स्त्रियों को भोजन के बदले में किसी भी प्रकार का कार्य करवाया जा सकता था। आम तौर पर 'रोटी साट्टा' पाँच-सात वर्षों के अस्थायी अनुबंध के तौर पर होता था।

परिवार द्वारा उसे छुड़ाने का प्रयास किया जाने लगता था। हमें 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति द्वारा वैवाहिक संबंध बनाने के साक्ष्य मिलते हैं। इस प्रकार बनाये जाने वाले संबंधों को समाज में होने वाले विवाहों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता था, क्योंकि इन संबंधों के समय 'रोटी साट्टा' रखने वाले मालिक द्वारा पवित्र मंत्रों अथवा धार्मिक रीति-रिवाजों का विधिपूर्वक पालन नहीं किया जाता था। सम्भवतः इसलिए इन संबंधों के लिए ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में विवाह शब्द का इस्तेमाल नहीं मिलता है।[21] ऐसा एक ही मामला हमें मिला है :

> तथा गाँव नीलीया रे राः लालसिंघ सींव सिंघोत खांप मेड़तीया माघोदासोत कयो संवत् 1812 में नीलीयां री जाटणी ने इण री डावड़ी तीनु जणां नु में 'रोटी साट्टा' भेला राखीया था सु चोधरीयां री सांखा सुधो लिखो है सु चाकरी कीया आया पीछे इण जाटाणी रे डावड़ी उपर म्हारे चाकर गाँव धनेरीया रा जाट रो डावड़ो थो तीण नु राखीयो इण रे टाबर टुबर हुवो सो बरस दोय क हुवो ठाठ ने मालवे परा गया था सु हमें गाँव धनेरीया में आया है सो ईणा दीसा कचेड़ी जायने कयो अे म्हारा चाकर है म्हानु दीरावो तरे कयो इणा रा थे रूपीया लेवो सु म्हे लीया नहीं ने जाटाणी ने इणं रो डावड़ो पोर सु नीलीयां में ही जुदां हुय बैठा है सु कहे छै पांच रूपीया लेन म्हानु छोड़ो सु इणं रे क्यू कर छोड़णी आवै सु हमें ईणा रा लीखत देख चौकस ठीक कर वाजबी इणा रा चाकर हुवै तो ईणा नु दीराज देजो।
>
> (गाँव नीलीया के राठौड़ लालसिंघ सींव सिंघोत खांप मेड़तीया माघोदासोत द्वारा राज्य से अपील की गयी जिसके अनुसार उसने गाँव नीलीया की जाट स्त्री तथा उसकी लड़कियों को 'रोटी साट्टा' भेला (साथ) रखा था तथा इस बात की लिखत (लिखा-पढ़ी) चौधरियों (जाटों) की साक्षी में करवाई गयी। लालसिंघ के अनुसार अब तक तो इन लोगों द्वारा चाकरी की गयी परंतु कुछ समय पहले जब मैंने अपने दुसरे चाकर गाँव धनेरिया के जाट के लड़के को इसकी लड़की के भेला/साथ रख दिया और इस संबंध से उनके संतति भी हो गयी तो ये लोग भागकर मालवा चले गये तथा अभी कुछ समय पूर्व वापिस गाँव धनेरिया आये हैं। जाट स्त्री तथा उसका बेटा गाँव नीलीया में बैठे है तथा कह रहे है कि पाँच रुपये लेकर उन्हें छोड़ दिया जाए परंतु लालसिंघ ने दरबार को दलील दी जिसके अनुसार ये लोग अब उसके चाकर है तथा वह इन्हें छोड़ना नहीं चाहता। इस केस की सुनवाई पर श्री हजुर ने आदेश दिया कि अगर गाँव नीलीया की स्त्री तथा उसकी लड़कियाँ वाजबी (उचित) लालसिंघ की चाकर है तो उन्हें लालसिंघ को सौंप दिया जाए उन्हें अलग रहने की स्वीकृति नहीं दी जाए।)

अल्पायु की संतान सहित 'रोटी साट्टा' में आने वाली स्त्रियों के लिए यह प्रथा विपरीत परिस्थितियों में उनका जीवन तो बचा लेती थी, लेकिन उनका अपने परिवार, जाति, समाज से हमेशा के लिए अलगाव हो जाता था। 'रोटी साट्टा' इन स्त्रियों तथा इनकी लड़कियों के लिए सामाजिक मृत्यु के समान था। न केवल ये स्त्रियाँ अपितु इनकी बेटियों को 'रोटी साट्टा' के जाल से निकलना मुश्किल था। ऐसी स्त्रियों की लड़कियाँ भी अपनी संतान को 'रोटी साट्टा' में जन्म देती थी। इस प्रकार उनकी तीसरी पीढ़ी भी 'रोटी साट्टा' की जकड़न में फँस जाती थी। ऐसे में राज्य द्वारा भी 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति के पक्ष में निर्णय दिया जाता था जैसा कि ऊपर दिये गये उदाहरण से स्पष्ट होता है।

'रोटी साट्टा' की प्रथा तथा इसमें बने विभिन्न संबंधों को किसी प्रचलित परिभाषा में बाँधना कुछ कठिन है। हम इसे दास, बँधुआ मज़दूरी या बेगार के समकक्ष तो रख सकते हैं, परंतु अपनी विशिष्टताओं के कारण उसे मात्र वहीं तक सीमित नहीं कर सकते। 'रोटी साट्टा' इन सब प्रथाओं से कई मायनों में अलग थी। इसमें लड़कियों/स्त्रियों/स्त्रियों की संतानों की ख़रीद-फ़रोख़्त नहीं होती थी। न ही 'रोटी साट्टा' में आने वाली लड़की/स्त्री का परिवार 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति का कर्ज़दार होता था, और न ही किसी उधार को चुकता करने के लिए किसी सदस्य को बँधुआ मज़दूरी

---

[21] सनद परवाना बही नं. 3, वि.सं. 1821/1764.

में छोड़ने की स्थिति होती थी। इस प्रथा को हम बेगार भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें किसी प्रकार के आर्थिक दबाव का उदाहरण देखने को नहीं मिलता। न ही बेगार भुगत जाने के बाद मुक्ति का प्रावधान या अभिलाषा दिखती है। दरअसल, रोटी साट्टा की अपनी अलग विशेषताएँ हैं जो जो दास प्रथा, बेगार या बँधुआ मज़दूरी से अलग तरह की हैं।

इसीलिए 'रोटी साट्टा' प्रथा को ऐतिहासिक स्रोतों में 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति तथा उसके साथ रहने वाली लड़की/स्त्री/स्त्री की संतान के आपसी संबंधों के लिए सनद परवाना बहियों में भिन्न-भिन्न शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। 'रोटी साट्टा' में परिवार के सदस्यों द्वारा रखी गयी अविवाहित लड़कियों को जहाँ डावड़ी शब्दों से सम्बोधित किया गया है, वही विवाहित स्त्रियों तथा उसकी संतान के लिए चाकर शब्द प्रयुक्त किया गया है। सीताराम लालस द्वारा *राजस्थानी सबद कोस* में डावड़ी शब्द के पर्यायवाची के रूप में कन्या, दासी तथा सेविका शब्द दिये गये हैं, वही चाकर शब्द के पर्यायवाची शब्दों के रूप में सेवक, नौकर, दास आदि दिये गये हैं।[22] मध्यकालीन राजस्थान समाज में डावड़ी तथा चाकर शब्द का प्रचलन व्यापक रूप में था। लालस ने भी डावड़ी तथा चाकर शब्द के कई पर्यायवाची शब्द दिये हैं। दरअसल इन दोनों शब्दों का अर्थ परिस्थिति विशेष के अनुसार अलग-अलग रूपों में निर्धारित होता था। मध्यकालीन राजस्थान में डावड़ी शब्द का प्रचलित अर्थ है कम उम्र की लड़की, लेकिन जब किसी रानी के साथ दहेज में दी जाने वाली डावड़ी दासी होती थी, वहीं किसी पिता द्वारा अपनी अल्प आयु की लड़की के लिए भी डावड़ी शब्द प्रयुक्त किया जाता था। इसी प्रकार चाकर शब्द के भी परिस्थिति विशेष के अनुसार अर्थ बदलते रहते थे। उदाहरणस्वरूप राजकीय वर्ग में घरेलू कार्य करने वाले विभिन्न जातियों के लोगों (धोबी, माली, और मेहरा)[23] के लिए चाकर शब्द प्रयुक्त किया जाता था।

'रोटी साट्टा' और नारी पर अधिकार/नियंत्रण का अर्थशास्त्र

'रोटी साट्टा' के विभिन्न संदर्भों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि 'रोटी साट्टा' की प्रथा में प्रवेश के समय दोनों पक्षों की आपसी सहमति रहती थी। किसी भी लड़की/स्त्री को 'रोटी साट्टा' में लेने के लिए उस पर या उसके परिवार पर इस बात के लिए दबाव नहीं बनाया जाता था, परंतु एक बार किसी लड़की/स्त्री को उसके परिवार द्वारा 'रोटी साट्टा' में सौंपने के बाद नज़रिया बदल जाया करता था। लड़की/लड़का/स्त्री 'रोटी साट्टा' की प्रथा में दिये जाने पर उसके संरक्षक द्वारा उनके साथ-साथ उनके वारसी (वारिस) के अधिकार भी सौंप दिये जाते थे। जब तक जिस व्यक्ति के पास लड़की या स्त्री या उसकी संतानें अधिकार में रहते थे, वे अपनी इच्छा से घर और गाँव से बाहर नहीं निकल सकते थे। इन लोगों पर 'रोटी साट्टा' में रखने वाले व्यक्ति का पूर्ण नियंत्रण रहता था। 'रोटी साट्टा' में आये हुए व्यक्ति की अपनी कोई व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं होती थी। उससे किसी प्रकार का, कैसा भी, कहीं पर भी काम लिया जाता था। जब तक व्यक्ति 'रोटी साट्टा' में रहता था, तब तक मालिक की मर्ज़ी के बग़ैर कहीं नहीं जा सकता था और वैध रूप से वही उनका संरक्षक/वारिस होता था। यहाँ तक कि जब तक 'रोटी साट्टा' से वैध रूप से छुटकारा नहीं हो जाए, व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों के साथ भी मिल-जुल नहीं सकता था। 'रोटी साट्टा' में आयी हुई लड़कियों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी भी उनके मालिक की होती थी। ये लड़कियाँ इतनी कम उम्र की होती थी कि किसी अन्य व्यक्ति के

---

[22] कोई वीर प्रकृति वाली स्त्री कहती है— हे सखी हूं सारी वातां रीस सहण वाली हूं, महारी डावड़ी ही रीस में आय कुछ कहै तौ सह लेउ सौ सासु ननद रौ तो सहू ई सहू. मध्यकालीन राजस्थान के समाज में डावड़ी रखने का उच्च वर्ग में आम प्रचलन था. सीताराम लालस (2006), वही : 1873.

[23] ये जातियाँ अपने जातिगत व्यवसायों के अनुसार शासक वर्ग में पीढ़ी-दर-पीढ़ी कार्य करती थीं. इन्हें भी ऐतिहासिक स्रोतों में चाकर शब्द से सम्बोधित किया जाता था. धोबी कपड़े धोने के लिए, माली फल, सब्ज़ी लाने के लिए, मेहरा पानी से संबंधित कार्य करते थे.

बहकावे में आकर अथवा घर छोड़ कर कहीं निकल जाने का भी डर रहता था। ऐसी अवस्था में 'रोटी साट्टा' के मालिक पर लड़की की सुरक्षा की पूरी ज़िम्मेदारी होती थी। जब लड़की के परिवार के सदस्य कुछ वर्षों बाद लौटकर लड़की को ले जाने के लिए आते और लड़की नहीं मिलने की स्थिति में लड़की के परिवार द्वारा 'रोटी साट्टा' सौंपने वाले व्यक्ति के विरुद्ध अपनी लड़की को बेचने का आरोप लगाते हुए राज्य की कचहरी में अपील कर देते थे।[24]

'रोटी साट्टा' से छुटकारा

जब परिवार के पुरुष सदस्य पाँच या दस वर्ष बाद लौटकर अपने गाँव आते थे तब वे अपने बच्चों को छुड़वाने की कोशिश करते थे। जब 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति द्वारा उनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया जाता था, ऐसे में लड़कियों के परिवार द्वारा उनको 'रोटी साट्टा' की प्रथा से बाहर निकालने के लिए मजबूरन राजा के दरबार में फ़रियाद करनी पड़ती दरअसल 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति द्वारा लड़की को आसानी से मुक्त न करने के अनेक कारण थे। जिनके अधिकार में लड़कियाँ या स्त्रियाँ सौंपी जाती थीं वे जागीरदार, ज़मींदार या महाजन वर्गों के होते थे। ग्रामीण समाज पर उनका दबदबा होता था। सौंपे गये सदस्य आमतौर पर कमज़ोर समुदायों के होते थे। मालिक लोग आम तौर पर बच्चों को आज़ाद करने से मना कर देते थे, क्योंकि बड़े होते हुए लड़के या लड़की की काम करने की क्षमता व गुणवत्ता बढ़ रही होती थी। ऐसी स्थिति में लड़कियों की स्थिति बदतर बन जाती थी। उन्हें दासी की तरह रखा जाता था। उनका यौन शोषण किया जाता था। इस लिहाज़ से 'रोटी साट्टा' की प्रथा बच्चों और स्त्रियों के लिए बेहद दमनकारी और अमानवीय थी। इसका यह पहलू बँधुआ मज़दूरी/दास प्रथा जैसा ही था।

राज्य व्यवस्था ने इस प्रथा को न तो रोकने का और न ही इसमें सुधार लाने का प्रयास किया। यह उच्च वर्ग के लिए आर्थिक व सामाजिक रूप से लाभकारी थी। दरबार द्वारा भी 'रोटी साट्टा' में आये हुए व्यक्ति से उसके मालिक की तरह ही नगद धन लिया जाता था। राज्य केवल तभी सामने आता था जब कोई व्यक्ति कचहरी में अपील करता था। वहीं पर स्त्रियों तथा उनकी लड़कियों को रोटी साट्टे में रखने के लिए उनके मालिकों द्वारा भी अपीलें की गयीं तथा स्त्रियों और उनके बेटों द्वारा भी अपने छुटकारे के लिए राज्य से प्रार्थना की गयी। आमतौर पर ऐसी अपीलें लड़कियों के परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा की जाती थीं। लड़की को 'रोटी साट्टा' से मुक्त कराने के पीछे उसके परिवार के भी आर्थिक तथा सामाजिक कारण होते थे। मारवाड़ के समाज में लड़कियों की सगाई के समय उनके माता-पिता अथवा उनके संरक्षक द्वारा रीत की रक़म[25] ली जाती थी जो उनको 'रोटी साट्टा' से निकालने के लिए दिये जाने वाले नगद मूल्य खाद्य-खुराक की तुलना में काफ़ी ज़्यादा होती थी। 'रोटी साट्टा' में हमें रिश्तों का मूल्य आर्थिक तौर पर भी स्पष्ट नज़र आता दिखाई देता है। स्त्री संतान साट्टे में आये हुए केसों में आमतौर पर छुटकारा सम्भव नहीं हो पाता था। इन मामलों में राज्य भी पक्षपात करता था। उसका झुकाव रोटी साट्टे के मालिक की तरफ़ होता था, और छुटकारे की रक़म अत्यधिक माँगी जाती थी जिसकी भरपाई सम्भव नहीं हो पाती थी।

सनद परवाना बहियों में केवल एक संदर्भ में एक बेटे के 'रोटी साट्टा' से मुक्त होने के प्रयत्न के साक्ष्य मिलते हैं। इस मामले में अविवाहित लड़कियों की खाद्य-खुराक के मूल्य की तुलना में काफ़ी अधिक मूल्य दरबार तथा 'रोटी साट्टा' के मालिक को देने का आदेश राज्य द्वारा दिया गया और ऐसे में पूरे परिवार में से केवल एक बेटा 'रोटी साट्टा' से मुक्त होने का प्रयास कर पाया। आमतौर पर

[24] सनद परवाना बही नं. 14, वि.सं. 1831/1774 ई.

[25] मारवाड़ के समाज में सगाई के समय लड़की के पिता द्वारा लड़के के पिता से विवाह से पूर्व सगाई के समय वधू-मूल्य लिया जाता था जिसे राजस्थानी स्रोतों में रीत की रक़म के नाम से सम्बोधित किया गया है.

लड़कियों के मुक्ति के पीछे यह दलील दी जाती थी कि वे कुँवारी लड़कियों का अपनी ही जाति में विवाह करेंगे। लेकिन, यह दलील ही काफ़ी नहीं होती थी। छुटकारे के बदले भरण-पोषण की रक़म की माँग भी अधिक की जाती थी तथा साथ में छुड़ाने वाले व्यक्ति को भी वर्ष भर श्रम करना पड़ता था। उदाहरणस्वरूप भीनमाल परगना के गाँव पावली के पिटल दुजै द्वारा दरबार में अपील की गयी जिसके अनुसार उसका भाई पीथा गाँव पावली में रहता था। वही पर उन दोनों पति-पत्नी की वि.सं. 1812 में मृत्यु हो गयी। दुजै के अनुसार उसी समय उसको अहमदाबाद की तरफ़ जाना था। जाने से पहले उसने पीथा की बेटी को गाँव वीरसुरा में चौधरी पदमै के पास बाजरी साट्टे रख दिया। दुजै के अनुसार पीथा की लड़की को चौधरी पदमै के पास सौंपने से पहले ही उसकी सगाई उसके पिता के जीवित अवस्था में गाँव दासपी के पिटल हरनाथ से की गयी थी। ऐसे में चौधरी पदमै द्वारा यह शर्त रखी गयी कि अगर उसे हरनाथ बीस रुपये लड़की के खाद्य-खुराक के दे और वर्ष भर उसके खेत में चाकरी करे तो वह लड़की का विवाह उसके साथ करवा देगा। हरनाथ ने चौधरी पदमै को 20 रुपये खाद्य-खुराक के दिये तथा साल भर तक उसके खेत में चाकरी भी करता रहा। जब उसके बाद भी चौधरी पदमै ने लड़की हरनाथ को नहीं सौंपी तो अंत में परेशान हो कर हरनाथ किसी दूसरे गाँव में जाकर मेहनत-मज़दूरी करने लगा। पीथा का भाई दुजा गुजरात से आया तथा पदमै से अपनी भतीजी की वापसी की माँग की, लेकिन पदमै ने लड़की को देने से इनकार कर दिया। राज्य द्वारा पूरे केस की सुनवाई की गयी तथा चौधरी पदमै को पीथा की लड़की को दुजा को सौंपने का आदेश दिया गया।[26] इसी प्रकार गाँव मानासर के माली जाति के सुधर द्वारा अपनी भतीजी को पण्डित राजाराम के पास 'रोटी साट्टा' से मुक्त करवाने की राज्य से अपील की गयी। सुधर द्वारा राज्य को दलील दी गयी कि उसकी भतीजी कुँवारी (अविवाहित) है तथा उसकी उम्र विवाह लायक़ हो गयी है। अगर उसे उसकी भतीजी को दिलवा दिया जाए तो माली जाति में ही किसी लड़के से विवाह करवा देगा। राज्य द्वारा पण्डित राजाराम को सुधर की भतीजी उसे सौंपने तथा बदले में वाजबी (उचित) खाद्य खुराक (भोजन का मूल्य) लेने का आदेश दिया गया।[27]

दरअसल 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति द्वारा लड़की को आसानी से मुक्त न करने के अनेक कारण थे। जिनके अधिकार में लड़कियाँ या स्त्रियाँ सौंपी जाती थीं वे जागीरदार, ज़मींदार या महाजन वर्गों के होते थे। ग्रामीण समाज पर उनका दबदबा होता था। सौंपे गये सदस्य आमतौर पर कमज़ोर समुदायों के होते थे। मालिक लोग आम तौर पर बच्चों को आज़ाद करने से मना कर देते थे, क्योंकि बड़े होते हुए लड़के या लड़की की काम करने की क्षमता व गुणवत्ता बढ़ रही होती थी। ऐसी स्थिति में लड़कियों की स्थिति बदतर बन जाती थी। उन्हें दासी की तरह रखा जाता था। उनका यौन शोषण किया जाता था। इस लिहाज़ से 'रोटी साट्टा' की प्रथा बच्चों और स्त्रियों के लिए बेहद दमनकारी और अमानवीय थी। इसका यह पहलू बँधुआ मज़दूरी/दास प्रथा जैसा ही था।

जब किसी लड़की को 'रोटी साट्टा' से मुक्त करवाया जाता था तब गाँव के मुख्य लोगों की उपस्थिति में गवाहों तथा दरबार के आदमी के समक्ष बाक़ायदा लिखत-पढ़त के कागद तैयार किये जाते थे। इस कागद में लड़की की जाति, परिवार अथवा पिता का नाम, गाँव तथा 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति का नाम जाति, गाँव, खाद्य-खुराक का मूल्य आदि पूर्ण विवरण दर्ज किया जाता था ताकि भविष्य में 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति द्वारा लड़की पर अपना अधिकार प्रकट करने की स्थिति

[26] सनद परवाना बही नं. 8, वि.सं. 1825/1768.

[27] सनद परवाना बही नं. 5, वि.सं. 1823/1766.

उन्हें प्रमाण के तौर पर इस्तेमाल किया जा सके। राज्य की कचहरी में भी 'रोटी साट्टा' के इस कागद को पुख़्ता सबूत के तौर पर समझा जाता था। हमें बहियों में ऐसे भी संदर्भ मिलते हैं जिसमें 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति द्वारा लड़की को मुक्त करने से इंकार करने पर उसके विरोध में पूरा गाँव ही उठ खड़ा हुआ तथा सम्मिलित रूप से राज्य की कचहरी में लड़की को मुक्त करने के लिए दबाव बनाया गया। गाँव गोहरे के जाट राजे तथा उसके गाँव के जाटों द्वारा संयुक्त रूप से कचहरी में राजे की बेटी, जो वि.सं. 1813 में राजपूत माकणोत लोघसिंघ के पास भुखमरी से बचाने के लिए 'रोटी साट्टा' में सौंपी गयी थी, को छुड़ाने की अपील की गयी। गाँव के लोगों के अनुसार उन्होंने लोघसिंघ को पाँच रुपये खाद्य-खुराक देने का भी आग्रह किया था, परंतु लड़की को 'रोटी साट्टा' से मुक्त नहीं किया गया।[28] आमतौर पर राज्य 'रोटी साट्टा' रखने वाले व्यक्ति को लड़की की विवाह योग्य होने पर विवाह करने के लिए मुक्त करने का आदेश लड़की के परिवार के पक्ष में ही देता था।[29]

सनद परवाना बहियों के विभिन्न उदाहरणों के अध्ययन से साफ़ होता है कि मारवाड़ के समाज में 'रोटी साट्टा' प्रथा में आयी हुई लड़कियों के छुटकारे की सम्भावनाएँ थीं, लेकिन विवाहित स्त्रियों तथा उनकी स्त्री संतानों के लिए रोटी साट्टे से बाहर निकलना सम्भव नज़र नहीं आता है। मारवाड़ राज्य द्वारा भी इस प्रकार के विभिन्न मामलों की सुनवाई में जो निर्णय दिये गये उनके अध्ययनों से भी यह बात स्पष्ट होती है कि राज्य भी उच्च जाति के पुरुषों के निम्न जाति की स्त्रियों के घरेलू श्रम, यौनिकता तथा उनकी प्रजनन क्षमता का दोहन करने को समर्थन देता हुआ प्रतीत होता है। विवाहित स्त्रियों को 'रोटी साट्टा' से मुक्त करने वाला एक भी निर्णय नहीं मिलता है। इस तरह आमतौर पर स्त्रियों तथा उनकी लड़कियों पर उच्च जाति के पुरुषों के अधिकार को राज्य द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

निष्कर्ष

हमारे स्रोतों से एक बात साफ़ नज़र आती है कि मध्यकालीन समाज, ख़ास कर निम्न वर्ग उस रूप में वर्गीकृत नहीं था जैसा कि नातेदारी के संबंधों के तहत बाद के स्रोतों में, ख़ास कर जनगणना के विवरणों से मालूम चलता है। इस समाज की संरचना बहुत तरल थी। स्त्री-पुरुष संबंध, परिवार का संगठन, नारी की छवि जो कि बाद के काल में काफ़ी स्थिर नज़र आती है, वह इस काल में स्थिर नहीं है। नौकरी, दासता, चाकरी की परिभाषाएँ बदलती रहती हैं। इन्हें मात्र आर्थिक व्याख्या में नहीं बाँधा जा सकता, और ना ही उनकी नितांत कर्मकाण्डीय परिभाषा दी जा सकती है। प्रजा और राजा, मालिक और नौकर, स्त्री और पुरुष, पति और पत्नी, पिता और बच्चे, माँ और बच्चों के संबंधों में परिस्थितियों के अनुसार बदलाव नज़र आते हैं, जो शायद इन समाजों की विशिष्टता थी। सरसरी तौर पर देखने में हमें 'रोटी साट्टा' एक आर्थिक व्यवस्था नज़र आती है जिसके माध्यम से निम्न तबक़े के लोग अपना और अपने परिवार की लड़कियों का जीवन कठिन आर्थिक परिस्थितियों में बनाए रखने में सफल हुए। लेकिन बात इतनी सरल नहीं है। 'रोटी साट्टा' प्रथा के उद्‌भव/अस्तित्व के पीछे कई कारण नज़र आते हैं। समाज में प्रचलित किसी भी प्रथा के पीछे उस स्थान तथा काल–विशेष के पर्यावरण का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत अध्ययन है जो अठारहवीं शताब्दी के राजस्थान के पश्चिमी भाग में स्थित मारवाड़ प्रदेश पर केंद्रित है। यह प्रदेश इतिहास में अपनी विषम भौगोलिक व पर्यावरणीय परिस्थितियों के चलते मारवाड़ अर्थात् मृतकों के देश के नाम से कुख्यात है। जहाँ सामान्यत: बिना किसी प्राकृतिक आपदा के ही मनुष्य का जीवन दुष्कर था।

---

[28] सनद परवाना बही नं. 7, विंसं. 1824/1767.

[29] सनद परवाना बही नं. 7, वि.सं. 1824/1767.

इसीलिए मारवाड़ की जनसंख्या बहुत विरल थी। आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में विभिन्न बीमारियों से लोगों के बचाव का कोई साधन नहीं था। किसी भी प्रकार की महामारी के आने पर गाँव के गाँव वीरान हो जाते थे। ऐसी स्थिति में ज़ाहिर है कि लोगों की आयु भी कम होती थी। शिशु मृत्यु–दर भी चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में अधिक थी। ऐसे में निम्न वर्ग की लड़की/स्त्री की मारवाड़ समाज में उपयोगिता तथा आवश्यकता स्पष्ट नज़र आती है। स्त्री का श्रम करने और प्रजनन करने वाली उपकरणनुमा 'वस्तु' के रूप में ऐसा उपयोग शायद ही कहीं और देखने को मिले।

'रोटी साट्टा' जैसी प्रथा का जन्म भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था, सामंतवाद, जातिवाद, लिंगभेद के कारण होता है। यही कारणों के कारण इस प्रथा को राजकीय मान्यता भी मिलती है। 'रोटी साट्टा' प्रथा का अगर हम सूक्ष्म अन्वेषण करेंगे तो जाति आधारित वर्गीकरण के साथ लिंग आधारित वर्गीकरण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका नज़र आएगी। इस वर्गीकरण के कारण इस प्रथा के अंतर्गत औरत को शोषण की दोहरी मार झेलनी पड़ती है। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों की स्त्रियों की श्रम क्षमता, प्रजनन क्षमता, यौनिकता का शोषण करने का माध्यम बनाए जाने के कारण इस प्रथा को आसानी से राजकीय संरक्षण प्राप्त हो जाता है। इस तरह निम्न जाति के पुरुष की प्राकृतिक आपदा निम्न जाति की औरत के लिए सामाजिक आपदा बन जाती है। इस प्रकार पितृसत्ता, वर्ण–व्यवस्था, सामंतवाद, जाति प्रथा स्त्री को एक मूल्यवान वस्तु के रूप में तब्दील कर देते हैं। पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण निम्न जाति का पुरुष औरत को उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उच्च जाति के पुरुष के यहाँ गिरवी रख देता है। सामंती समाज इसे आसानी से मान्यता भी दे देता है। वर्ण और जाति प्रथा पर आधारित समाज को इस प्रथा से कोई परेशानी नहीं होती और यह प्रथा यथावत बनी रहती है।

मध्यकालीन समाज में लड़कियों तथा स्त्रियों को रोटी साट्टे में रखने के उपरोक्त विवरण से यह बात साफ़ हो जाती है कि तत्कालीन राजपूताना के सामंती समाज में निम्न जाति की स्त्री की उपयोगिता और उपलब्धता न केवल उच्च जातियों द्वारा निश्चित की गयी बल्कि निम्न जाति के पुरुष ने भी उस प्रक्रिया में भाग लिया। इसकी एक वजह वह भी थी जिसका उल्लेख जेम्स सी. स्कॉट[30] और सुमित गुहा[31] ने अठारहवीं शताब्दी के पहले के किसी भी समाज के लिए जनसंख्या के महत्त्व पर लिखा है। औरत अपनी प्रजनन क्षमता की वजह से शायद समाज को पुनः स्वीकार थी। न केवल समाज बल्कि राज्य इस पूरी प्रकिया में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता नज़र आता है। ग़ौरतलब है कि मेरे द्वारा संदर्भित ज़्यादातर दस्तावेज़ राजकीय हैं। ज़्यादातर मौक़ों पर रोटी साट्टे में होने वाले अपवादों या उल्लघंनों में राज्य मध्यस्थता करता नजर आता है। इन परम्पराओं को पूर्णरूपेण राज्य तथा धर्म की वैधता मिली हुई थी। यहाँ दिलबाज़ सिंह द्वारा कही गयी बात का भी ध्यान रखना ज़रूरी है, 'राज्य पारिवारिक संबंधों में न केवल दख़ल देता हुआ बल्कि उन्हें निर्धारित करता हुआ भी नज़र आता है।'[32] अठारहवीं सदी में भी अपने क्षेत्र के प्रत्येक गाँव में प्रत्येक परिवार तक हस्तक्षेप हमें राज्य के स्वरूप को नये नज़रिये से देखने के लिए बाध्य करता है।

संदर्भ

गोविंद अग्रवाल (1974), *चुरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास,* लोक संस्कृति शोध संस्थान, नगर श्री, चुरू.

जयचंद (1963), *सायकी,* चंटाजलि वैराही, जयपुर.

जया प्रियदर्शिनी (2014), 'रिडिफ़ाइनिंग सोशल वर्ल्ड्स : द 'मीनियल्स' ऐंड सर्विस जातीज़ इन 18थ सेंचुरी मारवाड़', पीएचडी थीसिस, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली.

[30] सनद परवाना बही नं. 5, विंसं. 1823/1766.

[31] जेम्स सी. स्कॉट (1998).

[32] सुमित गुहा (2001).

जेम्स सी. स्कॉट (1998), *सीइंग लाइक अ स्टेट,* येल युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हैवन.

नंदिता प्रसाद सहाय (2016), *पॉलिटिक्स ऑफ़ पेट्रोनेज ऐंड प्रोटस्ट : द स्टेट, सोसाइटी ऐंड आर्टीज़ंस इन अर्ली-मॉडर्न राजस्थान,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

बाँकीदास ग्रंथावली (1957), सं. बाहरठ कविया मुरारीदान आयाचक तथा महताब चंद्र खारैड़ विशारद, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

मीना गौर (1987), *सती ऐंड द सोशल रिफ़ॉर्म्स इन इंडिया,* पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर.

वर्षा जोशी (1995), *पॉलिगैमी ऐंड पर्दा : वीमेन ऐंड सोसाइटी एमंग राजपूत्ज़,* रावत पब्लिकेशंस, जयपुर.

वेंडी डोनिगर और ब्रायन स्मिथ (1991), *द लाज़ ऑफ़ मनु,* पेंगुइन, लंदन.

शशि अरोड़ा (1978), *राजस्थान में नारी की स्थिति, 1600 से 1800 ई.,* रावत पब्लिकेशंस, जयपुर.

संतोष यादव (1987), *उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में स्त्रियों की स्थिति,* प्रिरवैल पब्लिशर्स, जयपुर.

सी.एम. अग्रवाल (2007), *राजपूत लेडीज़ इन मुग़ल हरम्ज़,* इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यटर्स, नयी दिल्ली.

सीताराम लालस (2006), *राजस्थानी-हिंदी संक्षिप्त शब्दकोश,* प्रथम खण्ड, ग्रंथांक-156, चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर.

सुमित गुहा (2001), *हेल्थ ऐंड पॉपुलेशन इन साउथ एशिया,* परमानेंट ब्लैक और सी. हर्स्ट ऐंड कं., लंदन.